वेद के प्रसिद्ध विद्वान् स्वर्गीय पं० श्रीपाद दामोदर जी सातवलेकर द्वारा लिखित अन्तिम लेख

गायत्री

गायत्री मंत्र की उपासना अति प्राचीन काल से—ऋषिकाल से—इस देश में चल रही है। वह आज भी शुरु है। प्रत्येक आर्य संध्या करने के समय गायत्री मंत्र का जप करता ही है। जपका अर्थ है **जपः तदर्थभावनम्** (योग-दर्शन) अर्थात् उस मंत्रके अर्थ की भावनासे अपना मन ओत प्रोत भर देना है। अपने मनमें वही भाव रहे ऐसा करना है। संध्या करने वाले आर्य मंत्रके अर्थकी भावना से अपना मन भर देते हैं या नहीं यह वैयक्तिक प्रश्न है। परन्तु संध्या करने के समय यह गायत्री मंत्र कई वार उच्चारा जाता है। बोला जाता है, इतनी बात तो सत्य है। संध्याके अन्य मंत्र केवल एक ही बार बोले जाते हैं, परन्तु यह गायत्री मंत्र अनेक वार बोला जाता है। यह इसके महत्त्वको सूचक बात है।

इस गायत्री मंत्र को गुरुमंत्र भी कहते हैं, जिस समय द्विजका उपनयन होता है, उस समय उपनयन करनेवाला गुरु उस उपनीत शिष्यको इस मंत्रका उपदेश देता है। गुरुका दिया हुआ यह मंत्र है, इसलिए इस मंत्र को गुरुमंत्र भी कहते हैं। गुरुमंत्रके अमुक अर्थ हैं। गुरु से प्राप्त मंत्र, गुरुका दिया मंत्र, महत्त्वपूर्ण मंत्र, पूज्य मंत्र, सबसे उत्तम मंत्र, श्रेष्ठ मंत्र, प्रिय व हितकारी मंत्र, शक्तिशाली मंत्र, अमूल्य मंत्र, महा मूल्यवान् मंत्र, विश्वके गुरुका— प्रभुका वर्णन करनेवाला मंत्र, दिव्य प्रकाश देने वाला मंत्र। इन अर्थोंको देखनेसे इस गुरुमंत्रके महत्त्वका

पता लग सकता है। इस मंत्रमें ऐसा महत्त्व है, इसीलिए इसका महत्त्व अनादिकाल से सब लोग मानते आए हैं।

उपनयन संस्कार में गुरु इसी मंत्रका उपदेश शिष्यको करता है और जिसको इस गुरुमंत्र का उपदेश हुआ है, उसने किसी भी दूसरे मंत्रको किसी अन्य गुरुसे लेना नहीं चाहिए, ऐसा विचार अनादिकाल से अपने भारत देशमें प्रसिद्ध है क्योंकि यह एक ही "गुरुमंत्र" है अर्थात् श्रेष्ठ मंत्र है। श्रेष्ठ मंत्रका उपदेश जिसको हो चुका है; वह दूसरे मंत्र क्यों ले ? इसलिए इस गुरुमंत्रका उपदेश जिसने लिया है, उसको दूसरे मंत्रका उपदेश नहीं लेना चाहिए।

यद्यपि इस समय कई द्विज इस "गुरुमंत्र" का उपदेश देने पर भी अन्यान्य मंत्रोंका उपदेश यवनादिकोंसे लेते हैं, पर वैसा करना अयोग्य है। क्योंकि इस एक ही मंत्रसे सब कार्य हो सकते हैं कि जो अन्यान्य मंत्रों से होने की संभावना है। अर्थात् इस गुरु मंत्र की योग्यता सचमुच असाधारण है।

इस गुरुमंत्र का जप करने के समय प्रथम ओंकार बोलते हैं, पश्चात् तीन या सात व्याहृतियां बोलते हैं और पश्चात् गायत्री मंत्र बोलते हैं और अन्तमें फिर ओंकार बोलते हैं अर्थात् ओंकार के संपुर में गायत्रीमंत्र बोला या जपा जाता है। वह इस तरह हैं—

गुरुमंत्र

ओ३म् भूर्भुवः स्वः। तत्सवितुर्वरेण्यं भर्गो देवस्य धीमहि। धियो यो नः प्रचोदयात्॥ ऋ. ३।६२।१०; वा यजुः३।३५; २२।९; ३०।२ :३६।३ साम. १४६२ तैत्ति. सं. १।५।६।४; ४।१।११।१ त. आ. १।११।२।

इस तरह प्रणवयुक्त व्याहृति तीन के समेत इस गुरुमंत्रका जप करने की पद्धति सर्वत्र प्रचलित है। कई सप्त व्याहृतियों का भी प्रथम उच्चारण करते हैं। कई प्रत्येक मंत्रपाद के साथ ओंकारपूर्वक सप्त व्याहृतियों का जप करते हैं, परन्तु हमने जो पाठ ऊपर दिया है, वही पाठ और वैसा जप करने की पद्धति विशेप रीति से प्रचलित है। इसलिए उपासना करनेवालों को ऐसा ही पाठ स्वीकारना उचित है।

मंत्रके जपका अर्थ ही मंत्रके अर्थकी भावना से अपने मनको भर देना, अपने मनको तन्मय करना, मनमें दूसरा कोई विचार न करना और मंत्र का भाव ही मनमें रखना है। इसलिए इस गुरुमंत्रका जप करनेवालों की सुविधा

के लिए यहां ओंकार व्याहृतियां और मंत्र का आशय संक्षेप से बताते हैं। जो पाठक जप करना चाहते हैं, वे इस भावको मन में धारण करें और इस भावसे जो अपना कर्तव्य ध्यान में आता है, उसको करके अभ्युदय और निःश्रेयस प्राप्त करने का प्रयत्न करें।

ओंकार

इस गुरुमंत्रके साथ प्रथम ओंकार है, यह ओ३म्, ओं अथवा ओरूम् ऐसा लिखा जाता है। प्लुत ओंकारका उच्चारण करना चाहिए। इस कारण "ओरूम्" यह अधिक स्पष्ट है। ओ३म् में भी प्लुत उच्चारण होता है। इसलिए इसमें मुख्य उच्चारण की बात प्लुत उच्चारण की है। यह ध्यान में धारण करनी चाहिए। "ओ-ओ-ओ-म्" ऐसा तीन मात्राओं का इसका उच्चारण है।

ओं में "अ-उ-म्" ये तीन अक्षर हैं और तीन वेदों का यह सार है, ऐसा माना जाता है।

(१) 'अ" कार ऋग्वेद के प्रारंभ का अक्षर है। जैसा "अग्निमीले-पुरोहितम्" का प्रारंभ "अ" कारसे हुआ है। यही ऋग्वेदका प्रारंभ है।

(२) "उ" कार यजुर्वेदके मध्य से लिया है। यजुर्वेदका मध्य २०वें अध्यायके अन्तसे होता है। यजुर्वेदमें ४० अध्याय हैं। उसका आधा भाग २०वें अध्यायके अन्तमें समाप्त होता है। इस अध्यायके अन्तिम पद ये हैं—"**जुषन्तां सोम्यं मधु**"। यहां अन्तमें "उकार" है। यही "उ" कार ओंकार का मध्य अक्षर है।

(३) सामवेद का अन्त "**स्वस्त नो बृहस्पतिर्दधातु ओ३म्**" से हुआ है। इस तरह सामवेद का अन्त "म" कारसे हुआ है।

इस तरह तीन वेदसे "अ-उ-म्" ये तीन अक्षर साररूप से लेकर ओंकार बना है। इसकारण इसको तीनों वेदों का सार या सत्त्व कहते हैं। तीनों वेदों का अध्ययन करनेकी सूचना इस रीतिसे इस ओंकारसे मिलती है।

ओंकार में "अ-उ-म्" के पश्चात् अर्धमात्राका ऊचारण है वह अथर्ववेद का द्योतक है। चारवेद मिलकर एक ही "पवित्र वेद" बनता है। "वेदका पढ़ना, सुनना सुनाना आर्यों का परम धर्म है।" इस नियमके साथ वेदके उपदेश को अपने आचरणमें लाना भी अत्यन्त आवश्यक है। यह सब कर्तव्य ओंकार बता रहा है। ओंकारमें स्थित "अ-उ-म् का अर्थ माण्डूक्य उपनिषद्में

दिया गया है। वह साधक को अवश्य ध्यानमें धारण करने योग्य है।

'अ' कार

अकार, उकार और मकारको **जाग्रति—स्वप्न--सुषुप्ति** का दर्शन मानकर बताया है कि यह मानवी जीवन का सूचक ओंकार है। मनुष्य का जीवन इन तीन अस्थाओं में व्यतीत होता है। मनुष्य कुछ घंटे जागता है, कुछ समय उसका स्वप्नमें जाता है और शेष सब समय उसका सुषुप्ति में जाता है। इस तरह मनुष्य का जीवन इन तीन अवस्थाओं में व्यतीत होता है। ये तीन अवस्थायें ओंकार के अकार-उकार-मकार से दर्शायी हैं।

मनुष्य का जीवन ओंकारमय होना चाहिए।

ओं इत्येतदक्षरमिदं सर्वं।···भूतं भवद् भविष्यदिति सर्वं ओंकार एव॥

माण्डूक्य—१

"यह सब ओंकार हैं। जो भूतकालमें था, जो वर्तमानकाल में है और जो भविष्यकालमें होगा, वह सब ओंकार ही है।" अर्थात् यह सब विश्व ही ओंकारका रूप है। अकार भूतकाल है, उकार वर्तमानकाल है और मकार भविष्यकाल है। साधक अपने जीवन में ये तीनों अक्षर देखे और अपने जीवन के भत, वर्तमान और भविष्यकालके जीवन विभागों को अकार, उकार और मकाररूप बनानेका अनुष्ठान करे। यह अनुष्ठान किस रीतिसे करना चाहिए, इस विषय में इसी माण्डूक्य उपनिषद् ने कहा है, वह यहां अब लक्ष्यपूर्वक देखिए।

जागरितस्थानो···अकार···आप्नोति ह वै सर्वान् कामान् आदिश्च भवति॥९॥ स्वप्नस्थान··· उकार···उत्कर्षात् उभयत्वाद्वा, उत्कर्षति ह वै ज्ञानसंतति, नास्याब्रह्मविकुत्ले भवति॥१०॥ सुषुप्तिस्थान··· मकार···मिनोति ह वा एतत्सर्वं अपीतिश्च भवति॥११॥

(माण्डूक्य उप. ९. ११)

जाग्रतावस्था बतानेवाला अकार है। इसमें प्रयत्न करके यह प्रथम स्थानमें होता है और सब कामनाओंको प्राप्त करता है। स्वप्न स्थानकी अवस्था बतानेवाला उकार है। इससे वह उत्कर्ष प्राप्त करता है, ज्ञानकी प्रगति सम्पादन करता है और इतनी उन्नति करता है कि इसके कुलमें ब्रह्म-ज्ञानी ही उत्पन्न होते हैं। सुपुप्ति स्थानकी स्थिति बतानेवाला मकार है। इस स्थितिमें वह सबको मिलता है, सिद्धि तक पहुँचता है।" यह है साधकको

सिद्धि प्राप्त करनेका अनुष्ठान। यह किस रीतिसे किया जाता है, यह अब देखिये।

जाग्रतावस्था में ऐसा यत्न करना योग्य है कि जिन प्रयत्नों से वह "आदि" बने अर्थात् प्रथम स्थान में आ जाए। जो कार्य वह करे, प्रथम स्थान में विराजने योग्य बने। शिक्षक बनना है तो प्रथम स्थान में विराजनेवाला शिक्षक हो। जो भी कार्य वह करे, उसमें वह प्रथम रहे। जो प्रथम रहेगा, उसकी सब शुभ इच्छायें तृप्त होने योग्य उत्तम परिस्थिति उसको प्राप्त होगी।

द्वितीय अक्षर उकार है। यह उत्कर्ष और उन्नति का दर्शक है। ज्ञान प्राप्त करके उत्कर्ष, उदय तथा उन्नति प्राप्त करनी है। ज्ञान इतनी उच्च अवस्था तक प्राप्त करना कि जिससे इसके कुल में कोई अज्ञानी उत्पन्न न हो सके। ज्ञान से अभ्युदय प्राप्त करने की सूचना यहाँ मिलती है।

तृतीय अक्षर मकार है। माननीय अवस्था का दर्शक यह है। जो प्रथम स्थान में विराजता है, जो ज्ञान से उत्कर्ष प्राप्त करता है, वह सब स्थानों में माननीय होगा, इसमें क्या सन्देह है। वह सब नापता है और सिद्धि तक पहुँचता है।

जीवन में ओंकार के तीनों अक्षर लाने का यह अर्थ है (१) प्रथम स्थान में विराजमान होना (२) ज्ञान से अभ्युदय प्राप्त करना और (३) श्रेष्ठ सिद्धि को प्राप्त करना। संक्षेप से यह है मानवी जीवन का कार्यक्रम जो ओंकार के तीन अक्षरों से सूचित होता है।

यह एक जीवन की सात्त्विक महत्त्वाकांक्षा है। मनुष्य को अपने जीवन में यह प्राप्त करनी चाहिए। इस विषय में बहुत लिखने योग्य है। परन्तु इन तीन बातों में सब कुछ आ गया है। इस लिए अनुष्ठान करने वाले की दृष्टि इस ओर खींचकर हम आगे व्याहृतियों से जो अनुष्ठान सूचित होता है, वह देखेंगे—

व्याहृति

"व्याहृति" का अर्थ "गुप्त संकेत का शब्द" है। जो शब्द विशेष अर्थवान् है विशेष गुप्त परन्तु महत्त्व का आशय बताता है, उसको "व्याहृति" कहते हैं। ये व्याहृतियाँ सात हैं। परन्तु इनमें तीन विशेष ही महत्व की हैं। देखिये—

मुख्य तीन व्याहृतियां

"भूः, भुवः, स्वः," ते तीन व्याहृतियां मुख्य समझी जाती हैं। इनसे जो

बोध मिलता है, वह अब देखिए।

१—भूः (भू सत्तायाम्) अस्तित्व, अपनी, स्थिति, ऊपर उठना, उत्पन्न होना, जीवित रहना, चलाना, सहायता करना, अभ्युदय प्राप्त करना ये मूल अर्थ हैं। अस्तित्वका भाव मुख्य है। पहली मुख्य बात अपने अस्तित्व की है। वह अपना अस्तित्व सुखसे रहना आवश्यक है।

स भूरित्येव ऋग्वेदस्य रसं आदत्त

(जै. उ. १।१।३)

उस प्रजापतिने "भूः" यह ऋग्वेद का साररूप रस ग्रहण किया", अर्थात् ऋग्वेद का सार 'भूः" है अर्थात् अपने अस्तित्व के लिए जिसकी आवश्यकता होती है, वह सब ऋग्वेद से प्राप्त होता है

भूरिति वा अयं लोकः तै. १।१।५

भूरिति वै प्राणः। तै. उप. १।५।३

पुरुषः, तस्य भूरिति शिरः। बृ. उ. ५।५।३

"भू का अर्थ भूमि है। भू का अर्थ प्राण है और मनुष्य का सिर भी भू का अर्थ है।" पृथिवी पर मनुष्य रहता हैं। पृथ्वी से उत्पन्न अन्न खाकर मनुष्य जीवित रहता है। उस मनुष्य का शरीर, सिर और प्राण इसी से टिके रहते हैं। यह सब 'भू' से बोधित होता है। मानव के सुखमय जीवन के लिए जिसकी आवश्यकता है, वह सब भू है।

२—भुवः (भुवोऽव कल्पने) भुवः का अर्थ कल्पना करना, ज्ञान प्राप्त करना, शुद्ध करना विचार करना, मिलाना। भुवः का अर्थ ज्ञान प्राप्त करके अपना जीवन परिशुद्ध बनाना, अपने अभ्युदय का विचार करना और अपने में शुभ भावों को मिलाना।

भूः व्याहृति से अपना अस्तित्व टिकाने का बोध प्राप्त हुआ। वह अस्तित्व पत्थर जैसा नहीं, अपितु ज्ञानयुक्त अस्तित्व चाहिए, यह बात 'भुवः' व्याहृतिने कही है। मनुष्य का अस्तित्व रहे, पर वह ज्ञान से परिशुद्ध होता रहे। इसके कुछ वचन भी यहां देखिये—

"भुव इति यजुर्भ्यः। छां. उ. ४।१७।३

भुव इत्यन्तरिक्षम्।

भुव इति वायुः तै. १।५।१

भुवोऽन्नम्। महाना' उ. ७।२

भुव: 'यह व्याहृति यजुर्वेद-यज्ञवेद से प्राप्त हुई है। कर्मयोग का बोध वह करती है। वायु और अन्न भी भुवका अर्थ है। अन्तरिक्ष में वायु गति करता है, मिलाता है, शुद्धता करता है। यही प्रगति, मिलाना और शुद्ध भुव इस व्याहृति से बोधित होती है। अब "स्व:" का भाव देखिये—

३. "स्व:" (स्वर) - (स्व) अपना (र) गति, तेज, उष्णता, प्रेम, दान और समर्पण। अपना तेज, अपनी प्रगति, सत्कार्य में अपना समर्पण, अपने हृदय में प्रेम रखना इत्यादि अर्थ स्वर के हैं। अपना प्रकाश बढ़ाना, अपने जीवन को तेजस्वी करना, अपने अभ्युदय के लिए यत्नवान् होना, अपना समर्पण करके जनता जनार्दन का हित करना, यह भाव इस व्याहृति में है। इसका अर्थ देखिए।

"स्वरिति प्रतिष्ठा। बृ. उ. ५।५।३।४
सुवरिति व्यानः। तै. उ. १।५।।३
देवान् सुवर्यतः। श्वे. २।३
सुवरन्नम्। महाना. ७।१
तपसां ऋषय स्वरन्वविन्दन्। महाना. २२।१
सत्येन न सुवर्णाल्लोकाच्च्यवन्ते।। महाना. २२।१

"स्व:" यह सबकी प्रतिष्ठा है। सबका आश्रय है। शरीर में व्यापने वाला प्राण स्व है। स्व: प्राप्त करने से देवों की प्राप्ति होती है। स्व: उत्तम अन्न है। तप से ऋषियों ने स्व: को प्राप्त किया था। जो सत्य का पालन करते हैं वे सुवर्गलोक से गिरते नहीं।

यह स्व: का माहात्म्य है। सबका आश्रय स्वर् है। सब शरीरभर में व्यापक होकर उसको चलानेवाला व्यान-प्राण "स्वर्" है। इस स्वर् को प्राप्त करने से देवों की शक्ति प्राप्त होती है। तप से अर्थात् श्रेष्ठ धर्मकार्य करने में जो कष्ट सहन करने पड़ते हैं, उनको सहन करने से इस स्वर् की प्राप्ति होती है। सत्य का पालन करने से यह स्वर् प्राप्त होता है। स्व: की कल्पना इससे हो सकती है।

भूर्भुव: स्व:

"भू:, भुव:, स्व:" ये तीन व्याहृतियां मुख्य हैं। इनका जो स्पष्टीकरण ऊपर दिया है। उसका मुख्य तात्पर्य यह है कि (१) अपना अस्तित्व टिके, अल्पायु में मृत्यु न आवे (२) ज्ञान प्राप्त हो और अपनी शुद्धता अन्तर्बाह्य रीति से हो तथा (३) अपना आत्मतेज बढ़े।"

यह संक्षेप से इन तीन व्याहृतियों से मिलले वाला बोध है। गायत्री का जप करने वाला इसको अपने मनमें धारण करके जपके समय तथा पश्चात् इस बोध से प्राप्त होने वाला अपना कर्त्तव्य ध्यान में धारण करे। इसको

कभी न भूले। यह मानवी उन्नतिका साधन है।

ओंकारपूर्वक तीन व्याहृतियों का उच्चारण करने के पश्चात् गायत्री मंत्र का जप किया जाता है। कई लोग सातों व्याहृतियों को बोलकर गायत्री-मंत्र बोलते हैं। उनको सातों व्याहृतियों का अर्थ समझना चाहिए। इसलिए पहले शेष चार व्याहृतियों का अर्थ देते हैं।

महः (महर्) की प्राप्ति। जिसको प्रथम तीन व्याहृतियों के उद्देश्य प्राप्ति हो गई हो अर्थात् अपने अस्तित्व, ज्ञान, पवित्रता तथा आत्म-प्रकाश की प्राप्ति हो गई हो, उसे महत्त्व प्राप्त होने में सन्देह ही क्या है? इस महः के अर्थ ये हैं—(१) महत्ता, महोत्सव—आनन्दोत्सव का समय, (२) यज्ञ, समर्पण, अर्पण (३) प्रकाश, तेज, ज्योति, (४) वेदमन्त्र, स्तुति के मंत्र ५) आनन्द, सुख प्रसन्नता; (६) शक्ति, सामर्थ्य, बड़प्पन (७) विपुलता, बहुतायत, (८) जल, जीवन, ये अर्थ इस व्याहृति के हैं। ये सभी अर्थ महत्त्व का प्रकाश करते हैं।

महः के विषय में उपनिषदादि में ऐसा कहा है—

मह इति ब्रह्म। तै १।५।१

मह इत्युपासीत, महान्भवति तै. ६।१७।३

"महः" यह ब्रह्म का नाम है, क्योंकि ब्रह्म महान् है। "महः" की उपासना जो करता हैं, वह बड़ा होता है। महान् होना चाहिए, यह महः का संदेश है। इसके पश्चात् जन नामक व्याहृति है।

जनः

'जनः' का अर्थ है जनन, प्रजनन करना, उत्पन्न करना, ऊपर आना, उगना जन्म लेना। मानव जाति। राष्ट्र जाति। महः के पश्चात जनः का स्थान है। "जन" से पूर्व "महः" का कथन महत्त्वपूर्ण है। यह कथन इस बात की ओर संकेत करता है कि मनुष्य स्वयं महान् होने के बाद ही सन्तानोत्पादन का कार्य करे। महान् पिता ही महान् पुत्र उत्पन्न कर सकता है। ब्रह्म भी स्वयं महान् होने के बाद ही सृष्टि उत्पन्न करता है।

तपः

शीतोष्णसहिष्णुता ही तप है। मनुष्य के जीवन में सुख-दुःख, हानि-लाभ, जय-पराजय आदि द्वन्द्वभाव तो आया ही करते हैं। उन्हें समभाव से सहन

करना ही तप है। अथवा "श्रुतं तपः सत्यं तपः दानं तपो दमस्तपः" इस उपनिषद्वाक्य के अनुसार अध्ययन करना, सत्य बोलना, दान देना और जितेन्द्रियता से जीवन यापन करना तप है।

सत्यम्

सत्य का अर्थ है अविनाशी। यही अमरता है। तपः की सीढ़ी को पार करके मनुष्य अपनी अन्तिम मंजिल पर जा पहुँचता है। सत्य की प्राप्ति ही अन्तिम लक्ष्य है। इस स्थितिपर आकर मनुष्य ब्रह्मरूप बन जाता है। ब्रह्मको जानने वाला ब्रह्म ही हो जाता है। सत्यं की स्थिति मोक्ष की स्थिति है।

इस प्रकार इन सात महाव्याहृतियों का वर्णन है। गायत्री मंत्र में इन सभी व्याहृतियों के अर्थ का समावेश है।

गायत्री का अर्थ

हम (सवितुः देवस्य) उस सविता देव के (तत् वरेण्यं भर्गः) उस ग्रहण करने योग्य शुद्ध तेजको (धीमहि) धारण करें या उस तेज का हम ध्यान करें (यः नः धियः प्रचोदयात्) जो देव हमारी बुद्धियों को उत्तम मार्ग में प्रेरित करे।

सविता देव सबका प्रसविता अर्थात् सबको उत्पन्न करने वाला है। "सविता वै देवानां प्रसविता" सविता सभी देवों को भी उत्पन्न करता है। आधिदैविक क्षेत्र में यह सविता परमात्मा है। वही सब सृष्टि का जनक है। वही सूर्य, चन्द्र, वायु, जल आदि देवों को उत्पन्न करता है। आध्यात्मिक क्षेत्रों में यह आत्मा आंख आदि इन्द्रियों को उत्पन्न करती हैं। इसलिए आंख आदि देवों को उत्पन्न करने के कारण आत्मा भी सविता है। यह सविता देव हमारी बुद्धियों को उत्तम मार्ग में प्रेरित करे।

इस गायत्री मंत्र का नित्यप्रति अर्थ मननपूर्वक जप करने से हर तरह उन्नति होती है। यह माता है, जो मनुष्य का निर्माण करती है। यह गानेवाले की रक्षा करती है। इसी लिए इसे गायत्री कहा गया है।

आइए हँसें !

विजय—मित्र ! इस शीशी में कौन-सा तेल है ?
सुनील—ओहो, इस में तेल नहीं, गोंद है।
विजय—तभी मेरी टोपी नहीं उतर रही है।